नाट्यशास्त्र में शब्दार्थ तत्त्व

सन्दीप कुमार[306]

भारतीय वाङ्मय की चिन्तन परम्परा में शब्दार्थ तत्त्व का महत्त्व सदा से रहा है। शब्द की महत्ता को आचार्य दण्डी के शब्दों में कहें तो–''ये सारा भुवनत्रय घोर अन्धकार में डूब जाये, यदि शब्द नाम की ज्योति इसे द्योतित न करे।''[307] वस्तुतः शब्द के बिना संसार शून्य-सा हो जाता है। इसी कारण वाक्यपदीय में भर्तृहरि शब्द को ब्रह्मस्वरूप मानते हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि तो एक शब्द के सुष्ठु प्रयोग और सही एवं पूर्ण ज्ञान को स्वर्गप्राप्ति का साधन मानते है।[308]

शब्द और अर्थ दोनों अन्योन्याश्रयसम्बन्ध से युक्त है। अर्थ शब्द के बिना नहीं रह सकता और नहीं कोई ऐसा शब्द है, जिसका कोई अर्थ न हो। अतः कविवर कालिदास ने भगवान् शङ्कर और पार्वती की संयुक्तता की सिद्धि के लिए शब्द और अर्थ को उपमान रूप में ग्रहीत किया है।[309]

आचार्य भरतमुनिप्रणीत 'नाट्यशास्त्र' भारतीय काव्यशास्त्र का प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ है। काव्य मानवीय भाषा का सुन्दरतम रूप है और काव्यों में भी नाट्य श्रेष्ठ है।[310] क्योंकि वह श्रव्य और दृश्य दोनों रूपों में होता है। काव्यों को अनुशासित करने के लिए काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों की रचना हुई और नाट्य को अनुशासित करने के लिए नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों की। किसी भी काव्य के लिए दो तत्त्व बहुत आवश्यक हैं- शब्द और अर्थ। आचार्य भामह के शब्दों में कहें तो - ''शब्द और अर्थ काव्य का शरीर हैं।[311] यद्यपि नाट्यशास्त्र प्रमुखतया नाट्यशास्त्रीय तत्त्वों की विवेचना करता है, पुनरपि शब्दार्थ के महत्त्व को वह भी निषिद्ध नहीं कर सका।

भाषा भाव सम्प्रेषण का सबसे सशक्त और सरल माध्यम है और भाषा शब्द और अर्थ पर अवलम्बित है। भाव सम्प्रेषण ही काव्यों में नाट्य की प्रमुखता का आधार है। इसलिए शब्द और अर्थ के महत्त्व को नाट्य में कम करके नहीं आँका जा सकता। इसी कारण आचार्य भरत नाटय शास्त्र के पन्द्रहवें अध्याय में लिखते हैं- क्योंकि आङ्गिक, आहार्य और सात्त्विक अभिनय वाक्यार्थ को ही व्यञ्जित करता है, इसलिए वाचिक अभिनय में यत्न करना चाहिए और वाणी को नाट्य का शरीर समझना चाहिए। सभी वाङ्मय और शास्त्र वाङ्निष्ठ ही है। अतः वाणी से परे कुछ भी नहीं वाणी ही सबका कारण है।[312]

---

[306] **शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली वि.वि**

307 bneU/Ure% ÑRLua tk;sr Hkqou=k;e~A ;fn 'kCnkà;a T;sfrjklaaalkjkUu nhI;rsAA dkO;kn'kZ&48

308 ,d% 'kCn% lqiz;qDr% lE;XKkr% LoxsZ yksds p dke/qXHkofrA egkHkk"; iLi'kkfÉd

309 okxFkkZfoo lai`DrkS okxFkZizfriÙk;sA txr% firjkS oUns ikoZrh ijes'ojkSA& j?kqoa'ke~&1@1

310 dkO;s"kq ukVdaaaaaa jE;e~&

311 'kCnkFkkS 'kjhjkS dkO;e~A dkO;kyÄïkj&1@16

312 okfp ;RuLrq dÙkZO;% ukV;S"kk ruq% Le`rkA vÄõusiF;lÙokfu okD;kFk± O;×t;fUr fgA okÄ~e;kuhg 'kkL=kkf.k okÄ~fu"Bkfu rFkSo pA rLek}kp% ijaa ukfLr okfX?k loZL; dkj.ke~& uk- 'kk- 15@2&3

भावों की रमणीय अभिव्यक्ति से रस का आस्वादन नाटय का परम प्रयोजन है। इसके लिए भाषा के सौष्ठव हेतु शब्दार्थ का नियमन आवश्यक है। अत: आचार्य भरत के किसी भी तत्त्व के निरूपण में शब्दार्थ का नियमन अभिव्यक्त होता है। कुछ तत्त्व विचारणीय हैं।

अभिनय:- आङ्गिक, सात्त्विक और आहार्य अभिनय वाचिक अभिनय को अभिव्यक्ति प्रदान करते है। यह उपर्युक्त विवेचन में देखा। वाचिक अभिनय में शब्दों के शुद्ध उच्चारण, प्रयोग और पाठ का अत्यधिक महत्त्व है। अत: वाचिक अभिनय के व्याख्यान में सर्वप्रथम शब्दों का व्याकरणिक वर्गीकरण- नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात, तद्धित, समास, संधि तथा विभक्ति के रूप में किया।[313]

नाट्य के लिए दो प्रकार का पाठ्य स्वीकार किया गया-संस्कृत और प्राकृत।[314] तत्पश्चात् संस्कृत पाठ्य का अनुशासन करके प्रयोग की दृष्टि से शब्द के दो विभाग किए गद्य और पद्य। भरतमुनि गद्य के लिए चूर्ण और पद्य के लिए निबद्ध शब्दों का प्रयोग करते हैं।[315] चूर्ण की परिभाषा करते हुए लिखते हैं कि जिसमें किसी निश्चित प्रकार के पदों की संयोजना न हो, जिसमें अक्षरों की संख्या नियत न हो, तथा जो अपने उद्दिष्टार्थ को प्रकट करने के लिए अनेक वर्ण या पदों को स्वतन्त्रतापूर्वक समाविष्ट कर सके, उसे 'चूर्ण' कहते हैं।[316] निबद्ध पद का लक्षण करते हैं-

''निबद्धाक्षरसंयुक्तं यतिच्छेदसमन्वितम्।

निबद्धन्तु पदं ज्ञेयं प्रमाणनियतात्मकम्।''[317]

छंदविवेचन में भरत ने काव्यगत शब्द प्रयोग की चेतना का रहस्योद्घाटन किया है कि नियताक्षर प्रमाण से निर्मित विभिन्न वृत्त का मूल शब्दगत है; क्योंकि वस्तुत: शब्द छन्दहीन और छन्द शब्दहीन होते ही नहीं।[318]

दोष :- आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में गुणदोषादि कुछ काव्यशास्त्रीय तत्त्वों की भी चर्चा की है, शब्दार्थ निरूपण में दोष की चर्चा का औचित्य इसलिए है, क्योंकि दोष शब्दार्थ की अभिव्यक्ति में हानि पहुँचाते है। ध्वनिवादी आचार्यों के मत में दोष काव्यशरीर रूपी शब्दार्थ का अपकर्ष करते हुए काव्यात्मभूत रस की अभिव्यक्ति में न्यूनता उत्पन्न करते हैं। भरत मुनि ने दस दोषों को माना है।- गूढार्थ, अर्थान्तर, अर्थहीन, भिन्नार्थ, एकार्थ, अभिप्लुतार्थ, न्यायादपेत, विषय, विसन्धि, और शब्दच्युत।[319]

---

313 ukek[;krfuikrksilxZrf¼rleklfuoZR;Z%A laf/foHkfDrfu;qDrks foKs;ks okfpdk fHku;%A&15&4

314 f}fo/a fg Le`ra ikB~;a laLÑra izkÑra rFkkA 15&5

315 foHkDR;Ura ina Ks;a fuc¼a pw.kZeso pA 15&36

316 vfuc¼ina NUnLrFkk pkfu;rk{kje~A vFkkZis{;{kjL;wra Ks;a pw.kZina cq/S%A15&37

317 uk- 'kk- 15&38

318 ukuko`Ùkfofu"iUuk 'kCnL;S"kk ruq% Le`rkA NUnksghuks u 'kCnks¿fLr uPNUn% 'kCn o£tre~A 15&41

319 xw<kFkZeFkkZUrjeFkZghua fHkUukFkZ esa dkFkZefHkIyqrkFkZe~A U;k;knisr fo"ke folfU/ 'kCnP;qr oS n'k dkO;nks"kk%AA&26@76

यहाँ दोषों के तीन आधार है।

1. शब्द विसन्धि, शब्दच्युत

2. छन्द विषम (जिसे परवर्त्ती आचार्यों ने छन्दोभङ्ग दोष कहा है)

3. अर्थ शेष सातों दोष अर्थाश्रित हैं–गूढार्थ, अर्थान्तर, अर्थहीन, भिन्नार्थ, एकार्थ, अभिप्लुतार्थ, न्यायादपेत।

गुण :– आचार्य भरत दस दोषों का वर्णन करके उनके विपर्यय रूप में गुणों को स्थापित करते हैं।[320] आचार्य भरत द्वारा प्रतिपादित गुणा उपर्युक्त दोषों के सर्वथा विपरीत नहीं हैं। डॉ नगेन्द्र के अनुसार[321]– आचार्य भरत द्वारा दिये गये गुण लक्षण में 'विपर्यय' शब्द के वास्तविक अर्थ के विषय में आचार्यों में मतभेद रहा है। इस शब्द के तीन अर्थ हैं–अभाव, अन्यथा भाव और वैपरीत्य। आचार्य अभिनव इसका अर्थ अभाव ही ग्रहण करते हैं। उनके अनुसार भरत का मत है दोष का अभाव गुण है। परन्तु भरत के विवेचन से उनके सभी गुणों की स्थिति अभावात्मक सिद्ध नहीं होती। उनके लक्षणों से स्पष्ट है, कि कुछ गुणों को छोड़कर शेष सभी गुण भावात्मक ही हैं। उदाहरण हेतु– समता की स्थिति अवश्य ही अभावात्मक है, किन्तु उदारता, सौकुमार्य, ओजस् आदि गुण जिनमें दिव्यभाव, सुकुमार अर्थ और शब्दार्थ सम्पत्ति आदि का निश्चित् रूप से सद्भाव है, उन्हें अभावात्मक कैसे कहा जा सकता है? अन्यथा भाव और वैपरीत्य की स्थिति विलोमरूप से भावात्मक हो जाती है। धन का सद्भाव भावात्मक स्थिति है, धन का अभाव अभावात्मक है, परन्तु ऋण का सद्भाव पुनः भावात्मक स्थिति है, क्योंकि ऋण के अभाव–रूप में उसकी अभावात्मक स्थिति भी होती है। इसलिए विपर्यय का अर्थ वैपरीत्य ही मानना संगत है। भरत ने दोषों का विवेचन पहले किया है, अतएव उसी क्रम में दोषों के सम्बन्ध से उनके विपर्यय रूप में उन्होंने गुणों को विवेचन किया है। जैकोबी के अनुसार यह क्रम सामान्य व्यवहार की दृष्टि से रखा गया है जिसके अनुसार मनुष्य के दोष अधिक स्पष्ट रहते हैं और गुणों की कल्पना हम प्रायः उन सहज ग्राह्य दोषों के निषेध रूप में ही रहते हैं। गुण शब्द और अर्थ का उत्कर्ष करते है। ध्वनिवादी आचार्य मम्मट इन्हें अङ्गी रस के धर्म मानते हैं।[322] और गुणवृत्ति से उनकी स्थिति शब्दार्थ में भी मानते है।[323]

आचार्य भरत दश गुणों का आख्यान करते हैं– श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, सौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदारता और कांति।[324]

अलङ्कार :– किसी बात को कहने में किन्हीं विशेष प्रकार के शब्दों का प्रयोग शब्दालङ्कार और किसी सामान्य

320 ,rs nks"kk fg dkO;L; e;k lE;d~ izdh£rrk%A xq.kk foi;Z;kns"kk ek/q;kSnk;Zy{k.kk%A 96@

321 dkO;kyÄïkjlw=ko`fÙk& Hkwfedk

322 ;s jlL;kfÄõuks /ekZ% 'kkS;kZn; bokReu%A& dkO; izdk'k&

323 xq.k u`R;k iquLrs"kko`fÙk% 'kCnkFkZ;kseZrkA & dk- iz-

324 'ys"k% izlkn% lerk lekf/% ek/q;Zekst% inlkSdqek;Ze~A vFkZL; p O;fDr:nkjrk p dkfUr'p dkO;xq.kk n'kSrs AA& uk- 'k- &17@95

बात को विशेष प्रकार से कह देना अर्थालङ्कार कहलाता है। अलङ्कार शब्द और अर्थ में चमत्कार का आधान करते हैं। नाटय शास्त्र के 29 वें अध्याय में सङ्गीत के वर्णन प्रसङ्ग में गीती के अलङ्कारों की महत्ता इस प्रकार प्रकट हुई है–

–''शशिना रहितेव निशा विजलेव नदी लता विपुष्पेव।

अविभूषितेव च स्त्री गीतिरलङ्कारहीना स्यात्।। (ना. शा. 29/45)

उत्तरवर्त्ती अलङ्कारवादियों ने इस मत को ऐसा ही स्वीकार कर लिया है–

'' न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्''[325]

आचार्य भरत ने चार अलङ्कारों की उद्भावना की है– उपमा, दीपक, रूपक और यमक।

आचार्य पाँच प्रकार की उपमा और दश प्रकार का यमक मानते हैं।

वृत्तियाँ :– वृत्तियाँ भाषागत गूढ चिन्तन का परिणाम है। आचार्य भरत की वृत्तियों की उत्पत्ति सम्बन्धी अवधारणा से यह सिद्धान्त पुष्ट होता है। आचार्य के अनुसार मधु-कैटभ से युद्ध के समय भगवान् विष्णु के पदन्यास भार से 'भारती', शार्ङ्गधनुष के संचालन में प्रयुक्त अतिशय सत्त्व से सात्त्वती, विष्णु के अङ्गहार तथा लीलाव्यापारों से शिखा बांधने के प्रयत्न से 'कैशिकी', तथा युद्ध काल में विष्णु के भीषण प्रयत्न, आवेश उत्तेजना आदि से आरभटी वृत्ति निष्पन्न हुई।[326] इस दृष्टान्त से पता चलता है, कि वृत्तियाँ भिन्न भावों और रसों के अभिव्यञ्जन में प्रयुक्त होती हैं।[327] ये भाव और रस अभिनयों से प्रकट होते हैं। जिनमें निश्चय ही वाचिक अभिनय प्रमुख होता है, क्योंकि वाक् ही रचनाकार, अभिनेता और सहृदय के सम्यक् संस्कारों को उपस्थापित करती है। इसी दृष्टि से भरत ने नाटक के प्रभाव के व्याघातों में पुनरुक्ति सामासिक शब्दों का हीन उच्चारण, विभक्तियों का अशुद्ध प्रयोग विसन्धि आदि भाषिक पक्ष पर विशेष बल दिया है।[328]

उपसंहार:– अभिनय, दोष, गुण, अलंकार तथा वृत्तियों के विवरण का शब्दार्थ चिंतनगत वास्तविक महत्त्व उनके सम्यक् प्रयोग सम्बन्धी निदेशों में है। ये दोष गुणादि स्वयं में कुछ नहीं अपितु, उनका मूल्य वस्तुत: भावोद्बोध तथा भावबोध अथवा रस के सन्दर्भ में है। काव्य में प्रयुक्त शब्दार्थ संदर्भहीन नहीं होते, अन्तत: वे मन: संवेगों तथा आत्मभाव की वाग्रूप अभिव्यक्तियाँ है। जिनका वर्गीकरण गुणालङ्कारादि प्रकारों में किया जाता है। तीनों अभिनय (आङ्गिक, सात्त्विक, आहार्य) वाचिक अभिनय को सम्पुष्ट करते हैं जो शब्दार्थ रूप है। दोषों के अभाव से शब्दार्थ निर्मल होते है। गुणों के आधान से वें उत्कृष्टता का प्राप्त करते है।

---

325 Hkkeg dkO;koÄïkj&1@13
326 ukV; 'kkL=k& 22@11&15
327 o`fÙklaKkÑrk ás"kk ukukHkkojlkJ;k&22@21
328 uk- 'kk-& 27@29] 30

अलङ्कारों के प्रयोग से उनमें सौन्दर्य और चमत्कृति आती है और वृत्तियों के सम्यक् उपयोग से शब्दार्थ काव्य के परमप्रयोजन ब्रह्मानन्द सहादर रस को अभिव्यक्त करते हैं। इस प्रकार नाटय शास्त्र से शब्दार्थ चिन्तन का मार्ग उत्तरवर्त्ती आचार्यों के लिए प्रशस्त हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

काव्यादर्श – आचार्य दण्डी – नाग पब्लिशर्स, दिल्ली 1999

काव्यालङ्कार – आचार्य भामह – विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली 1994

काव्यप्रकाश – आचार्य मम्मट – ज्ञानमण्डल लि., वाराणसी, 2027 विक्रमी

काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति- आचार्य वामन – हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 1990

नाट्यशास्त्र- भरतमुनि – चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1978